शिक्षा में अपवर्जन की प्रक्रिया

रोहित धनकर

यह वक्तव्य राजाराम भादू और भरत द्वारा संपादित एवं आधार प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक 'मुख्यधारा शिक्षा में दलित भेद' के लोकार्पण के अवसर पर दिया गया।

मित्रो, शिक्षा में अपवर्जन (एक्सक्लूजन) के विषय पर बोलने के लिए मैं अनाधिकारी व्यक्ति हूं क्योंकि मैं न तो समाजशास्त्री हूं और न ही अपवर्जन जैसे विषय का विशेषज्ञ। अतः मैं जो बातें कहूंगा वे समाज में भेदभाव और उसके स्वरूप के बारे में सामान्य-सी बातें ही ज्यादा होंगी। मैं ऐसा मानता हूं कि यदि हम समाज में किसी भी प्रकार के भेदभाव या अपवर्जन की बात कर रहे हैं और उसको हटाने की कोई रणनीति बनाना चाहते हैं तो समाज में व्याप्त अपवर्जन को समझना कि, इसकी अभिप्रेरणा क्या रही है और इसका इतिहास क्या है, उसे रेखांकित करना महत्त्वपूर्ण काम है। उसके बदलते हुए स्वरूप क्या हैं, इसे भी देखा जाना चाहिए। क्योंकि यदि हम अपवर्जन को दूर करना चाहते हैं तो हमें इन सब चीजों से भी रूबरू होना पड़ेगा जो इसके मूल में हैं। साथ ही यह भी समझना होगा कि अलग-अलग वक्त में इसके स्वरूप कैसे बदलते रहे हैं। इसलिए मैं बहुत थोड़ी-सी बात सामान्य चिन्तन के आधार पर इस बारे में भी रखूंगा और यह मैं एक शिक्षक की नजर से रखने की कोशिश करूंगा।

मुझे ऐसा लगता है कि समाज में अपवर्जन बहुत पुरानी बात है। वर्जन के विभिन्न रूप समाज के विभिन्न समूहों को लेकर भारतीय समाज में और अन्य समाजों में निश्चित रूप से हमेशा से रहे हैं। ऐसा दावा शायद कोई भी समाज नहीं कर सकता कि उसके यहां अपवर्जन न रहा हो। लेकिन यदि हम सिर्फ भारतीय समाज की बात करें, जिससे हम जुड़े हैं और जिसके हम हिस्से हैं, तो हम पाएंगे कि भारतीय समाज में अपवर्जन के विभिन्न प्रकार के रूप हमेशा ही रहे हैं। हम सब जानते हैं कि शूद्रों को वेद पढ़ने की मनाही थी। यह सीधा-सीधा मना करने वाला, वर्जित करने वाली किस्म का अपवर्जन है जो सीधे-सीधे कुछ लोगों के लिए कुछ कामों का निषेध करती थी। यह अपवर्जन का एक रूप था जिसे हम प्रत्यक्ष अपवर्जन कह सकते हैं। जिसमें शूद्र वेद नहीं पढ़ सकता या स्त्री वेद नहीं पढ़ सकती। तो एक तो हमारे समाज में कुछ इस प्रकार की चीजें थीं।

अपवर्जन के अन्य रूपों को चिन्हित करने के लिए हम एकलव्य की कहानी को देख सकते हैं। उसमें एक साथ अपवर्जन के दो रूपों और दो तरीकों के दर्शन होते हैं। पहले तो एकलव्य को योग्य होते हुए भी धनुर्विद्या सिखाने से मना कर दिया गया कि तुम उच्च कुल के नहीं हो। अतः तुम धनुर्विद्या नहीं सीख सकते। यह भी सक्रिय अपवर्जन है, जिन्हें आप बाहर रखना चाहते हैं उनको मनाही करने वाला। जिसका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। पर एकलव्य की कहानी में अपवर्जन का एक और अधिक भयावह रूप भी है। एकलव्य ने इन सारी वर्जनाओं के बावजूद धर्नुविद्या सीख ली थी। धनुर्विद्या समाज में स्थापित सत्ता के समीकरणों को उस वक्त हिला सकती थी। आजकल जिस प्रकार हथियार कर सकते हैं। धनुर्विद्या उस वक्त सत्ता के समीकरणों को हिला सकती थी। इसलिए एकलव्य

लेखक परिचय :

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 की संचालन समिति सदस्य, दिगन्तर के सचिव, पुस्तक : शिक्षा और समझ शिक्षा के संदर्भ और विकल्प (संपादित); आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा

सम्पर्क :

दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा,
खो नागोरियान रोड, जगतपुरा,
जयपुर - 302025

ने अपने सीखने से जो ताकत अपने आप ग्रहण कर ली थी उस ताकत से उसे वंचित करना लाजमी था। एकलव्य को वंचित करने का जो तरीका अपनाया गया वह शूद्रों या स्त्रियों को वेद पढ़ने से वंचित करने के तरीके से भिन्न था। जब सीधे-सीधे यह कहते हैं कि शूद्र को वेद पढ़ना मना है तो इस मनाही में यहां एक प्रकार की सीधी मनाही और ताकत आ रही है। लेकिन दूसरे तरीके में, जो कि एकलव्य के साथ अपनाया गया, एक व्यक्ति के संस्कारों और चिन्तन के माध्यम से अपवर्जन का काम कैसे करवाया जा सकता है, यह प्रमुख हो जाता है। एकलव्य का हाथ पकड़कर अंगूठा किसी ने नहीं काटा, बल्कि एकलव्य के अन्दर किस प्रकार के नैतिक मूल्य बैठे हुए हैं, किस प्रकार के सामाजिक मूल्य बैठे हुए हैं, उन मूल्यों को काम में लेते हुए उसको अपनी स्वयं की अर्जित की हुई शक्ति से वंचित कर दिया गया। यह अपवर्जन के दूसरे स्तर की बात है। इस दूसरे तरीके में व्यक्ति को सीधे-सीधे मना नहीं किया जाता। पर उसके शक्ति संपन्न होने की अधूरी प्रक्रिया को ही उसके विरूद्ध इस्तेमाल किया जाता है। एकलव्य ने धनुष चलाना तो सीख लिया। अतः शक्ति संपन्नता की तरफ एक कदम बढ़ाया। पर एकलव्य ने बिना सवाल किए गुरुदक्षिणा देने के सामाजिक मूल्य पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाए। गुरु के आदेश की आंख मूंदकर अनुपालना पर सवाल नहीं उठाए। अतः उसकी डी-कंडीसनिंग अधूरी थी, उसका सशक्तिकरण अधूरा था। गुरुदक्षिणा के मामले में एकलव्य विवेचनात्मक चिंतन के स्तर पर नहीं पहुंचा था। इसलिए परंपरावादी मूल्यों के चलते उसने सोचा कि गुरु को गुरुदक्षिणा तो देनी ही चाहिए और किस्सा खत्म। इसके आगे उसने नहीं सोचा। अतः वंचना के कुछ तरीकों के आधार समाज में बाहर होते हैं और कुछ व्यक्तियों के अन्दर भी होते हैं। एकलव्य दूसरे तरह का उदाहरण है।

हम जब गुरु-शिष्य परंपरा की बात करते हैं तो सुपात्र ढूंढ़ने की बात आमतौर पर की जाती है। गुरु-शिष्य परंपरा में बहुत से लोग हमेशा ऐसे सुपात्र की खोज करते थे जो उनकी विद्या को आगे ले जा सके। मुझे ऐसा लगता है, यदि आप इस नजर से देखें कि, सुपात्र ढूंढ़ने की कला वास्तव में बहुत से लोगों को यह कहने की कला है कि मैं तुम्हें नहीं सिखाऊंगा। यह एक सकारात्मक कदम है या नकारात्म कदम है मेरे विचार से इसका पता उन लोगों को चलता है जो सुपात्र नहीं हो पाए। सुपात्र ढूंढ़ने की परंपरा में व्यक्ति के कुल, गोत्र और उसके सामाजिक पृष्ठभूमि को देखा जाता था। जिसमें व्यक्ति की काबिलियत महत्त्वपूर्ण नहीं होती बल्कि कुल, गोत्र और सामाजिक पृष्ठभूमि महत्त्वपूर्ण हो जाता है। सुपात्र ढूंढ़ने की इस परंपरा को आज के समय में हम प्रवेश परीक्षाओं के रूप में देख सकते हैं। सुपात्र ढूंढ़ने का तरीका अपवर्जन का एक और स्वरूप है जो हमारे समाज में रहा है।

अपवर्जन की व्याधि हमारे समाज में इतनी व्यापक रही है कि इसके और भी अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। यह जरूरी नहीं है कि हमेशा सत्तासीन व्यक्ति ही इसका उपयोग करता रहा हो। हमारे यहां जो हुनर वाले लोग थे, जिनके पास कलाएं थीं, वे भी अपनी कलाओं को अपने सामाजिक और आर्थिक हितों की रक्षा के लिए सिर्फ अपने बेटे-पोतों या अपनी संतति या अपनी बिरादरी में ही सिखाते थे। उसके बाहर नहीं सिखाते थे। यह भी अपवर्जन का एक भिन्न प्रकार का स्वरूप है। लेकिन इन सारे के सारे स्वरूपों की चोटी कहीं न कहीं एक साथ बंधी हुई है। और इसका मकसद सिर्फ यही रहा है कि समाज में किसी तबके ने किन्हीं राजनैतिक या आर्थिक अधिकारों पर जिन भी कारणों से और जिस भी प्रकार से कब्जा कर लिया है वह उन आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों पर सतत रूप से अपने कब्जे को बनाए रखे। और वह बाकी तबकों को उस कब्जे से दूर रखने के लिए अपवर्जन का उपयोग करता है। अर्थात् जो वर्ग सत्ता और अर्थ से जितना दूर है उसे उतना ही दूर रखा जा सके और जो जितना नजदीक है वह उतना ही नजदीक रह सके। मुझे ऐसा लगता है कि अपवर्जन के ये सभी तरीके इसी भावना से संचालित होते रहे हैं।

जिन तरीकों की मैंने अभी तक बात की है ये सभी तरीके सामंतवादी समाज में धर्म की मदद से अपवर्जित करने के तरीके थे। लेकिन आज हम एक लोकतांत्रिक समाज में रहते हैं। लोकतांत्रिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति का बराबर का मूल्य होता है। लोकतांत्रिक समाज में कोई भी, किसी भी दूसरे मनुष्य को किसी काम के लिए साधन के रूप में नहीं देख सकता। हर इंसान अपने आप में साध्य है। हर इंसान अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। हर इंसान अपने आप में मूल्यवान है। सारे इंसानों की बराबरी और बराबरी के अवसर लोकतंत्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कह सकते हैं कि लोकतंत्र की जड़ में हरेक इंसान का बराबर का महत्त्व, बराबर के अवसर और सामाजिक न्याय है। यदि कोई भी इस प्रकार की प्रणाली समाज में बनाता है जिसमें लोगों को बराबर के अवसर नहीं मिलें, खासकर अपनी क्षमताओं को समृद्ध करने के, तो इससे एक दूसरी प्रकार की प्रक्रिया आरंभ होती है जो लोकतंत्र और लोकतंत्र की मूल भावनाओं के विरूद्ध है। यह प्रक्रिया लोकतंत्र की जड़ों को खोदने की तरफ जाती है। सामंतवादी समाज में सब लोगों की बराबरी और न्याय की परिभाषा भिन्न प्रकार की होती है। वहां हरेक के पास अवसर की समानता नहीं होती क्योंकि उसमें अवसर को तो पहले से ही जानबूझ कर बांटकर रखा जाता है। कुछ अवसर क्षत्रिय के हाथ में रहेंगे, कुछ ब्राह्मण के हाथ में रहेंगे, कुछ वैश्य के हाथ में रहेंगे और बचे-खुचे सेवा करने के अवसर शूद्र के हाथ में रहेंगे।

शिक्षा अपवर्जन के इन सामंती तरीकों के विरोध के लिए हो सकती है। वह लोकतंत्र के मूल्यों की, बराबरी की और न्याय की स्थापना का काम कर सकती है। अतः राजनैतिक रूप से घोषित लोकतंत्र में शिक्षा की भूमिका न्याय और बराबरी को जमीन पर उतारने की है। घोषित लोकतंत्र को वास्तविक लोकतंत्र बनाने की है। पर अपवर्जन के पीछे की भावना वर्चस्वशाली समूह की राजनैतिक और आर्थिक अवसरों पर अपना कब्जा जमाए

रखने की भावना, राजनैतिक रूप से घोषित लोकतंत्र में भी जारी रहती है। लोकतंत्र में जब अपवर्जन जारी रहता है तो वह अपना रूप बदलता है। फिर अंगूठा नहीं काटा जाता। फिर किसी को सीधे यह नहीं कहा जाता कि तुम्हारा दाखिला नहीं होगा या कि तुम्हें यहां नहीं लिया जाएगा। फिर इसके लिए शिक्षक के मन में कुछ ऐसी धारणाएं बनती हैं कि अमुक तबके के लोग सीखने में असमर्थ हैं या अन्य प्रकार से हीन हैं। यह भावना भी लोगों को शक्तिहीन बनाए रखने का हथियार है। यह चीज बहुत सूक्ष्म होती है और इसको प्रकट रूप में देखना बहुत ही मुश्किल होता है।

स्कूलों के संदर्भ में इस भावना से साक्षात्कार तब होता है जब आप शिक्षक से अनौपचारिक बात करते हैं। हम लोगों ने अभी आदिवासी बच्चों के साथ काम करना शुरू किया है। बहुत से शिक्षकों से जब हम वहां मिलते हैं तो बातों ही बातों में वे इस ढंग से बताते हैं जैसे कि आदिवासियों के प्रति बहुत ही सहृदय होकर बात कर रहे हों कि, 'देखिए, न तो इनमें इतनी रुचि है और न ही इनमें इतनी इंटेलीजेंस है, इसलिए ये थोड़ा ही सीख पाते हैं।' शिक्षा में यह बात बहुत बड़ी बात है। यह इतनी-सी बात नहीं है कि शिक्षक ऐसा आज मानता है कि आदिवासी में 'इंटेलीजेंस कम है' और कल उसका विचार बदल जाएगा और सब ठीक हो जाएगा। शिक्षा में यह इतनी आसान बात नहीं है।

मनोवैज्ञानिकों ने कुछ प्रयोग किए हैं जो इस तरह की भावना के घातक असर को उजागर करते हैं। कुछ ऐसी बातें होती हैं जो अपने आपको खुद ही सिद्ध करती हैं। जिसे अंग्रेजी में सेल्फ फुलफिलिंग प्रोफेसी कहते हैं। कुछ ऐसी भविष्यवाणियां होती हैं जो स्वयं को ही पूर्ण कर देती हैं। स्कूल में जब बच्चा आता है तो वह बड़ों से एक प्रकार का मार्गदर्शन, उत्साह और दिशा चाहता है। और जब बड़े उसको वह दिशा देने में भेदभाव करते हैं तो इसका असर उनके सीखने पर भी होता है। यदि कुछ बच्चों के बारे में शिक्षक के मन में ये धारणा है कि ये तो जल्दी सीख जाएंगे आगे बढ़ जाएंगे, और कुछ के बारे में ये धारणा होती है कि ये सीख नहीं सकते और आगे नहीं बढ़ सकते। तो ऐसे विचार के प्रभाव में छह महीने बाद वास्तव में इन बच्चों के सीखने में फर्क आ सकता है। यहां बहुत सारे लोग जानते होंगे, फिर भी मैं बहुत संक्षेप में याद दिला दूं कि शिक्षा में और सीखने के मनोविज्ञान के तहत ऐसे प्रयोग सचमुच में हो चुके हैं। ऐसा एक प्रयोग चूहों के ऊपर किया गया था और एक प्रयोग स्कूली बच्चों पर किया गया था। जो प्रयोग चूहों पर किया गया था वह बहुत मजेदार था। एक मनोवैज्ञानिक ने एक ही प्रकार के कुछ चूहे इक्ट्ठे किए और उनको दो हिस्सों में बांट दिया। उसने शोधकर्ताओं को कहा कि ये एक श्रेणी के चूहे बुद्धिमानी के लिए ब्रीड किए गए हैं। इनके माता-पिता भी खूब बुद्धिमान थे और ये दूसरी श्रेणी वाले चूहे बुद्धू हैं। वास्तव में चूहे एक ही तरह के और एक ही कुनबे के थे। अब दोनों श्रेणी के चूहों पर एक ही प्रकार के प्रयोग छह महीने तक किए गए। शोधकर्ताओं ने छह महीने तक अपने अवलोकनों को दर्ज किया। अवलोकन रिपोर्ट में बुद्धू चूहों ने सचमुच ही बुद्धू चूहों के रूप में व्यवहार किया और बुद्धिमान चूहों ने बुद्धिमान चूहों की तरह व्यवहार किया। चूहों ने वही किया जो शोधकर्ता देखना चाहते थे। या ऐसा कहें कि चूहों ने जो भी किया शोधकर्ताओं ने वही देखा जो वे देखना चाहते थे। शिक्षा में भी वास्तव में ऐसी ही स्थिति होती है। शिक्षा में क्योंकि बच्चों को बुद्धू कहना नैतिक रूप से समस्याप्रद हो सकता है। इसलिए बच्चों पर किए गए प्रयोग में बच्चों को बुद्धू नहीं कहा गया। शिक्षक से कुछ बच्चों के बारे में यह कहा कि ये विशेष रूप से बुद्धिमान बच्चे हैं और शिक्षकों ने जिस तरह का व्यवहार उनके साथ किया उसके फलस्वरूप उनका प्रदर्शन अन्य बच्चों से बेहतर रहा।

इसलिए शिक्षा में हम शिक्षक के मन में बैठी भेद की धारणाओं को निरापद नहीं मान सकते। खासकर यदि लोकतांत्रिक प्रणाली में हम सबको बराबर का अवसर देने की बात कह रहे हैं। स्कूल में बच्चों के लिए यदि बाकी सब अवसर बराबर हैं और शिक्षक के मन में भेदभावपूर्ण भावना है तो इससे अवसर की बराबरी समाप्त हो जाती है। शिक्षा और स्कूल के संदर्भ में इस बात को मैं रेखांकित करना चाहता हूं। इस तरह के आम अनुभव हम सभी के हैं और इस तरह के अध्ययन हुए हैं जिनमें समाज में और स्कूलों में दलितों के प्रति भेदभाव काफी उभर कर आया है। थोड़े समय पहले जयपुर, भोपाल और भारत में आठ अलग-अलग जगहों पर ए. आर. वास्वी ने एक अध्ययन किया था जिसमें लड़कियों के प्रति इस प्रकार का भेदभाव उभर कर आया था। अभी हम लोग आदिवासियों बच्चों के साथ अनौपचारिक रूप से काम कर रहे हैं। वहां बहुत स्पष्ट रूप से पूरी व्यवस्था में उनके विरूद्ध दुराग्रह उभर के आ रहा है। यह सारी चीजें बहुत आम हैं। लेकिन इस सब के चलते इन सब चीजों से निकलने का एक प्रकार का लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का दबाव भी है। इसलिए मेरा ऐसा मानना है कि आज के समय में वंचना या अपवर्जन का स्वरूप बदल रहा है। अपवर्जन के जो पुराने तरीके थे वे अभी समाप्त नहीं हुए हैं लेकिन इसका नया स्वरूप अभी धीरे-धीरे परिष्कृत रूप में निकल कर सामने आ रहा है।

अजवर्जन के ये परिष्कृत रूप पुराने रूपों से अधिक सूक्ष्म और अधिक घातक हैं। वर्तमान समय में बच्चों को प्राप्त होने वाली शिक्षा के रूपों में भेदभाव व श्रेणीकरण समाज के बड़े तबकों के साधनहीन व वंचित रखने के सशक्त तरीके के रूप में काम में लिया जा रहा है। कमजोर तबके के बच्चों को स्कूल भी ऐसे ही उपलब्ध करवाए जाते हैं जो उनको अपने क्षमतावर्धन में प्रभावशाली तबके के बच्चों की तुलना में पीछे रखें।

हम यदि एक न्यायपूर्ण समाज की रचना करना चाहते हैं तो परंपरागत रूप से दमित तबकों को वंचना के नए और पुराने सभी रूपों से बचाना होगा। अतः शिक्षा मे अपवर्जन का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। ◆